महाबोधी ग्रंथमाला नं० १३

भगवान् बुद्धकी शिक्षा

श्रीदेवमित्र धर्मपाल

महाबोधि सभा (भारत) ।

प्रमुख अन्तर्-राष्ट्रीय संस्था ।

३१ मई १८९१ में श्री देवमित्र धर्मपाल द्वारा संस्थापित ।

इसके कुछ उद्देश्य—

१. बौद्ध-धर्मका पुनरुज्जीवन करना, और पाली संस्कृत बौद्ध ग्रन्थोंका प्रकाशन और प्रसार ।

२. बौद्धदेशोंसे अध्यापक लाकर बौद्धकला कौशलका पुनरुज्जीवन करना ।

३. भारत और विदेशमें बौद्धधर्मके प्रचारार्थ युवक प्रचारकोंको शिक्षित करना ।

४. नालन्दा विश्वविद्यालयके नमूने पर एक बौद्ध-विश्वविद्यालय-केन्द्र स्थापित करना ।

५. विद्यार्थियोंको भारतसे बाहर यूरोप अमेरिका आदिमें पाली और बौद्ध-अनुसंधानके अध्ययनार्थ छात्रवृत्तिका प्रबंध-करना; और विदेशी बौद्ध-विद्यार्थियोंके लिये भारतमें अध्ययनार्थ सुविधाका प्रबंध करना ।

६. एक अच्छे प्रकाशन प्रेसके साथ एक अन्तर्-राष्ट्रीय बौद्ध पुस्तकालय और संग्रहालयका स्थापित करना ।

नोट—सभासद्के नियम आदिके विषयमें मंत्रीसे पत्रव्यवहार कीजिये । भारतमें महाबोधि-सभाका प्रधान-कार्य्यालय 4 A. कालेजस्क्वायर, कलकत्ता है । इसके अतिरिक्त गया, सारनाथ, मद्रासमें शाखायें हैं । मुख्य केन्द्र लंकामें है । लंदन और न्यु-यार्कमें शाखायें हैं ।

भगवान् बुद्धकी शिक्षा

लेखक—

श्रीदेवमित्र धर्मपाल

संस्थापक तथा प्रधान संचालक महाबोधि सभा

प्रकाशक

श्री देवप्रिय वलीसिंह,

महाबोधिसभा

(इसिपतन)

सारनाथ, बनारस

बुद्धाब्द २४७५

द्वितीय संस्करण १०००]

[मूल्य ≡)

सूचना ।

यह पुस्तिका अनागारिक धर्म-पाल (वर्तमान श्रीदेवमित्र धर्मपालकी पुस्तिका "What did the Lord Buddha Teach") का स्वतंत्र अनुवाद है। कुछ अध्याय नये भी जोड़ दिये गये हैं।

बनारस ।

३१-१०-३१ रा. सा.

मुद्रक—
कृ० व० पावगी
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी ।

भगवान् बुद्धकी शिक्षा।

(१)

सिद्धार्थ कुमारका जन्म।

दो हजार पांचसौ चौवन वर्ष हुये, वैशाख पूर्णिमाको [1]लुम्बिनीके राजोद्यानमें सूर्यवंशी इक्ष्वाकु-सन्तान राजा शुद्धोदनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। कुमारके जन्मके समय नाना प्रकारके मंगल शकुन हुये। कपिलवस्तुके लोगोंने ऐसे पुत्र-रत्नकी प्राप्तिके लिये अपने राजाके प्रति बड़ा हर्ष प्रकाशित किया।

कुमारके जन्मके कुछ दिनों बाद, काल-देवल ऋषिने देवताओंके मुखसे भविष्यके बुद्धके जन्मकी बात सुनी। उन्होंने राजा शुद्धोदनके राजप्रासाद पर आ, कुमारके दर्शनकी इच्छा प्रकट की। बहुमूल्य राजसी वेश-भूषामें स्वयं और कुमारको अलंकृत कर, ऋषिके आशीर्वादके लिये, राजा कुमार को ले आये। ऋषि कुमारका दर्शन पा, पहिले हँसे, और फिर रो पड़े। राजाने यह बात देखकर उसे ऋषिसे पूछा। ऋषिने कहा-मैं इसलिये हँसा कि यह शिशु आगे चलकर लोक-गुरु बुद्ध होगा, और लाखोंको पापसे बचायेगा; और रोता इसलिये हूं, कि-मैं इसके बुद्ध होने तक जी न सकूँगा।

पांचवें दिन राजाने वेदोंके मर्मज्ञ १०८ ब्राह्मणोंको अपने

---

१. रुम्मिनदेई (नेपालतराई) स्टेशन नौतनवा (B. N. W. R.) से ८, ९ मील।

महलमें निमंत्रित किया; और सुनहली थालियोंमें उत्तम खाद्य-भोज्य परोस, सन्तर्पित कर, उनसे कुमारका भविष्य पूछा। आठ बड़ेही चतुर ज्योतिषी इसके लिये चुने गये। उन्होंने कहा—यदि कुमारने गृह-वास स्वीकार किया, तो वह भूमण्डल का एकछत्र चक्रवर्ती राजा होंगे; और यदि संन्यासी हुये, तो संसारके अविद्यांधकारको दूर करनेवाले बुद्ध बनेंगे।

इससे पहिलेवाले जन्ममें यह भविष्यके बुद्ध, श्वेतकेतु नामक देवताके रूपमें तुषित-देवलोकमें वास करते थे। जब उनके जन्मका समय आ पहुंचा, तो देवताओंने आकर कहा कि संसारको पाप-मुक्त करनेके लिये मनुष्यलोकमें जन्म लेनेका आपका समय आगया। बोधिसत्त्वने पांच मंगल लक्षणोंको देख, सज्ञान हो माया देवीके गर्भमें आनेके लिये तुषित लोकका छोड़ दिया। फिर बुद्धोंकी चालके अनुसार वह दस मास तक पूरे ज्ञानके सहित माताके गर्भमें रहे; पूरा ज्ञान रखते ही वह गर्भसे बाहर निकले, और सारे लोकके देवताओंकी बधाई लेते हुये उसी समय उन्होंने यह शब्द कहे—"मैं लोकमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ प्रथम पुरुष हूँ।"

राजा ऐसे पुत्रका पिता होना, अपने लिये बड़ी सौभाग्यकी बात समझता था। उसने पुत्रके पालन-पोषणका उत्तम प्रबंध किया। राजकुमारके लिये तीन ऋतुओंके पांच, सात, नौ तलोंके तीन प्रासाद बनवाये गये। ग्रीष्म-प्रासाद ऐसे यंत्रसे युक्त बनाया गया था, कि चारोंओर कलसे पानीका फुहारा चलै, और उसमें बिजलीकी कड़क और चमक देख वर्षाकालका भान हो। शरद्-प्रासादको गर्म रखनेके लिये यांत्रिक-साधन एकत्रित किये गये थे। वर्षाकालमें, कुमार अपने प्रासादके नीचे न उतरते थे। राजोद्यानमें, कुमारके लिये सुंदर स्वच्छ-पुष्करिणी,

मधुर कूजन करनेवाले पंजर-बद्ध शुक, सारिका, कोकिल आदि पक्षिगण, और पालतू हरिन थे। कुमारके साथ खेलनेके लिये कितनेही समवयस्क शाक्य-कुमार थे। कुमारकी भविष्य-धर्म-पत्नी शील-सौंदर्य-सम्पन्ना. यशोधरा कुमारके जन्मके दिनही देवदहमें उत्पन्न हुई थी। जिसे १६ वर्षकी अवस्थामें कुमार ने स्वयंवर यज्ञ-में अनेक कलाओंमें अपना हस्तलाघव दिखला प्राप्त किया। कुमार और कुमारी अनेक शत सुंदरियोंसे घिरे मानुष-दुर्लभ, भोगोंको भोगते देवेन्द्रकी तरह विहार करते थे। कहीं कुमार विरक्त हो संन्यासी न बन जायें, इसके लिये राजाने कड़ी आज्ञा दी थी, कि कोई घृणास्पद, कुरूप, दूषित दृश्य उनके सामने न जाने पाये। प्रासादकी सीमाके भीतर कहीं विनाशका चिह्न नहीं रहने दिया जाता था—सूखे फूल, पीली पत्तियां तक उद्यानमें न रहने पाती थीं, कि कहीं इसीसे कुमारके चित्तमें निर्वेद न पैदा हो। उन्तीस वर्षकी अवस्थातक, जिस दिन कि राहुल उत्पन्न हुये, कुमारको प्रासादसे बाहर नहीं जाने दिया गया। जब कुमारको बाहर सैर करनेके लिये जाने देनेका निश्चय होगया, तो राजाने नगरमें घोषणा करवादी—कि नगरको सु-अलंकृत करना चाहिये, कहीं भी विनाश और खिन्नताका चिह्न न रहने देना चाहिये। सारथी छन्नके साथ चार श्वेत घोड़ोंके रथपर आरूढ़ हो राजकुमारने नगर-प्रवेश किया, नगरवासियोंने बड़े हर्षपूर्वक अपने भावी नृपतिका स्वागत किया। जिस समय चारों ओर यह आनंद मङ्गल हो रहा था, उसी समय एक ऐसा दृश्य, सामने आया, जिसे कि उन्होंने कभी न देखा था—एक दुर्बल निरीह वृद्ध पुरुष लाठी टेकता मानो जीवनसे युद्ध करता—सामने आ उपस्थित हुआ।

कुमार—"यह कैसा आदमी है—बाल सफेद, कमर झुकी, आंखें भीतर धंस गई हैं; लाठीके सहारे किसी तरह रास्ते-पर खड़ा है ? "

छन्न—"यह आदमी पहिले दूध पीनेवाला बच्चा था, माँने अपने दूधसे इसका पालन पोषण किया। जवान होनेपर यह बहुतही सुंदर, खेल-कूदमें तत्पर; पांच प्रकारके इन्द्रिय-सुखोंके भोगनेमें लिप्त रहा। समय बीतता गया, और अन्तमें अब यह जराजीर्ण-पंजरमें, जीवनके संध्याकालमें उपस्थित है।"

अत्यन्त उद्विग्न हो कुमारने पूछा—" क्या मैं भी ऐसा हूँगा ? "

छन्न—"हां, जरूर ! कुमार ! यह सभी प्राणियोंका साधा-रण धर्म है।"

कुमारने—"आः ! उस सुखसे मनुष्यको क्या चित्त-सन्तोष होगा, जोकि इतनी जल्दी विलीन होजाता है।"—कह सारथीको रथ लौटानेके लिये कहा, क्योंकि उन्होंने वह हृदय-द्रावक दृश्य देखा जिसके देखनेकी आशा न थी। लौटते वक्त रास्तेमें उन्होंने क्रमशः तीन और दृश्य देखे—१) चिर-रोगी, जिसके हाथ मुंहपर सूजन, शरीर-कांति नष्ट, जो कठिन वेदनासे कराह रहा था; (२) रोते हुये संबंधियोंसे अनुगत चार जनोंके कंधेपर एक मुर्दा ले जाया जा रहा था; (३) एक प्रसन्न-वदन काषाय-धारी भिक्षु, जिसके चेहरेसे मानो तेज बरस रहा था।

सारथीने कुमारको बतलाया—जो जो संसारमें उत्पन्न हुआ है, सभीके लिये व्याधि, जरा, मरण और मृत्यु अनिवार्य हैं; इन आपत्तियों से बचनेका कोई उपाय नहीं है। कोई कोई ही

इस काषायधारी भिक्षुकी तरह हैं, जिन्होंने व्याधि, जरा-मरण पर विचार करके गृह-त्याग दिया; और वह उस रास्तेके ढूंढनेमें लगे हैं, जिसे पाकर व्याधि, जरा, मरणसे छुटकारा मिले। जिस समय कुमार उसके प्रशांत मुख-मंडल पर एकटक देख रहे थे, उसी समय भिक्षु आकाशमें उठकर अन्तर्ध्यान होगया। यह अन्तिम चिह्न उनके क्षत-हृदयके लिये मलहम जैसा था।

यदि होसका तो आजही गृह-परित्याग करना है—यह निश्चय कर जिस समय कुमार महलकी ओर लौट रहे थे, उसी समय राजा शुद्धोधनका आदमी समाचार लेकर आया—राजकुमारी यशोधराको पुत्र उत्पन्न हुआ। यह सुनकर, कुमारके मुंहसे निकल पड़ा—"राहुल (=विघ्न)"। दूतने राजाको सूचना दी, कि कुमारने समाचार सुन "राहुल" कहा। राजाने समझा, यह कुमारके नामके लिये कहा है, और कुमारका वही नाम रक्खा। उसी समय एक और भी घटना हुई, जिसने कि कुमारके निर्वाण-प्राप्तिकी इच्छाको और प्रबल कर दिया। कृशा गौतमी एक शाक्य-कुमारीने अपने महलकी खिड़कीसे कुमारको देखकर एक गाथा कही—

"अति निर्वृत माता सोई, अति निर्वृत पितु सोय।
अति निर्वृत नारी सोई, जासु पती अस होय॥"

कुमारने "निर्वृत" (=आनन्दित, शान्त) शब्द सुनकर, सोचा—"जब राग, द्वेष, मोह, मान और मिथ्यादृष्टि (झूठी धारणा) की आग बुझ जाये, तब पुरुष निर्वृत (=निर्वाण-प्राप्त) होता है—", और इसपर बहुत प्रसन्न हो, अपनी बहुमूल्य मुक्ता-मालाको उतारकर गुरु-दक्षिणाके तौरपर कुमारीके पास भेज दिया।

राजकुमार महलमें गये, और जाकर सिंहासन पर बैठे। देव-कन्याओं जैसी सु-अलंकृत सु-भूषित सुन्दरियोंने नृत्य, गान, वाद्य आरम्भ किया। कुमारके लिये अब वह नीरस था; वह जल्दही निद्रामें चले गये। जिसपर वह सुन्दरियाँ भी अपने २ वाद्योंको रखकर सो गईं। जब कुमारकी आँख खुली, तो उन्होंने उन स्त्रियोंको नाना वीभत्स रूपोंमें सोये देखा—कोई अर्द्ध-नग्न थीं, किन्हींका मुँह खुला हुआ था, कोई दाँत पीस रही थीं; कोई बर्रा रही थीं। उस समय उन्हें वह इन्द्र-भवनसा भव्य प्रासाद मृत शरीरोंसे पूर्ण श्मशान सा दिखाई पड़ता था। कुमार उद्विग्न हो बोल उठे—"यह कितना हृदय-विदारक और घृणापूर्ण है; मेरे लिये आजही महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) करना उचित है।" फिर राजकुमारने जाकर, सारथी छन्नको उठाकर, घोड़ा तय्यार कर लानेकी आज्ञा दी। उस समय उनके मनमें विचार हुआ—"अन्तिम समय एक बार अपने पुत्रको देख लूं"; और वह यशोधराके शयनागारकी ओर गये; वहाँ उन्होंने जूहीके फूलोंकी शय्या पर राजकुमारीको एक हाथ शिशुके शिरपर रक्खे, सोये देखा। उन्होंने सोचा—यदि मैं राजकुमारीके हाथको शिशुके शिरसे हटाऊँगा, तो राजकुमारी जग उठेगी, और मेरे प्रयाण में विघ्न होगा। मैं पहिले बुद्ध बनूंगा, और फिर आकर पुत्रको देखूंगा। यह सोच वह महलसे उतर वहां पहुँचे, जहां घोड़ा खड़ा था। पास जाकर उससे कहा—"प्रिय कंथक! आज रात मुझे पार करो, जब मैं बुद्ध हो जाऊँगा, तो देव और मनुष्य लोकको पार कराऊँगा।" उसी रातको राजकुमार सिद्धार्थने महाभिनिष्क्रमण किया।

सुमेध ब्राह्मणका निर्वाण-त्याग।

बुद्धके पूर्ण उपदेशके जाननेके लिये जातकोंका पढ़ना उपयोगी है। इन जातकोंमें भगवान्‌के बुद्ध होनेके पहिलेके ५५० जन्मोंकी कथायें हैं।

चार-असंख्येय-एक लाख वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण महाशाल (महाधनी) कुलमें एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सुमेध था। कुल-मर्यादाके अनुसार बाल्यमें उसे वेदाध्ययनमें लगाया गया। बाल्यमें ही उसका पिता मर गया और वह एक महती संपत्तिका उत्तराधिकारी हुआ। एक समय ब्राह्मणने सोचा—'आवागमन दुःखका घर है, अतः मैं शोक-संतापके विनाश (के उपाय) को ढूंढूंगा। यह सोच काम-भोगोंसे विरक्त हो, उसने अपनी अपार संपत्तिको अर्थी, दरिद्र पुरुषोंको दान कर भिक्षुका वस्त्र धारण कर, हिमालयमें जा योगाभ्यास करना शुरू किया। समय समयपर परिव्राजक सुमेध अपने पासके नगरमें जाते थे, और लोग उनके पवित्र जीवनके कारण उनका सन्मान करते थे। एकबार दीपंकर बुद्ध, जो उस समय संसारको धर्म-उपदेश कर रहे थे, हिमालयके उस नगरके लोगोंका निमंत्रण स्वीकार कर वहां आनेको थे। लोग उनके लिये रास्ता ठीक कर रहे थे। उस समय सुमेध तापस उधरसे आ निकले, और उन्होंने लोगोंसे उसका कारण पूछा। लोगोंने बतलाया—दीपंकर बुद्ध पधारने वाले हैं, उन्हींके स्वागतके लिये हम मार्ग ठीक कर रहे हैं। सुमेध तापसने बुद्धका नाम सुन प्रसन्न हो, लोगोंसे कहा—मुझे भी एक टुकड़ा दो जिसे मैं ठीक करूँ; बुद्धका नाम भी लोकमें दुर्लभ है। सुमेधने मार्गका एक टुकड़ा पा, उसे

ठीक करना शुरू किया। अभी वह अपने हिस्सेके रास्तेको ठीक न कर पाये थे, कि दीपंकर बुद्ध आ पहुँचे। उन्होंने सोचा—ऐसे कीचड़के रास्तेसे बुद्धको जाने देना अच्छा नहीं है; और वहीं लेट गये, जिसमें कि बुद्ध और उनके शिष्य भिक्षु, उनके शरीर परसे चले जायें। इस तरह पड़े हुये सुमेध-तापसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ—'आजही यदि मैं चाहूँ, तो आवागमनसे मुक्त हो निर्वाणको प्राप्त कर सकता हूँ, किन्तु मैं अकेला भवसागर पार करना नहीं चाहता। मेरे ऐसे दृढ़-पराक्रमी पुरुषको बुद्ध बनकर, दीपंकर बुद्धकी तरह देव-मनुष्योंका निस्तार करना चाहिये।' दीपंकर बुद्धने सुमेधके पास जा, खड़ा हो भिक्षुओंको कहा—"देखो इस महा तापसको, आजसे असंख्येय कल्पों बाद, मेरीही तरह यह बुद्ध होगा, और गौतम बुद्धके नामसे प्रसिद्ध होगा। इसका पिता शुद्धोदन होगा, माता मायादेवी, और नगर [1]कपिलवस्तु। यह महाभिनिष्क्रमण करेगा, और पीपलके वृक्ष के नीचे बैठकर, सम्यक्-संबोधि प्राप्त कर करोड़ों प्राणियोंको तारेगा···।"

जिस वक्त दीपंकर बुद्धने यह व्याकरण (=कथन) किया, उस समय दसो लोकधातुओंके देवगण हर्षित हुये; और देव-मनुष्योंने कहा—यदि हम दीपंकर बुद्धके समय धर्मको न साक्षात्कार कर सके, तो गौतम-बुद्धके समय साक्षात्कार करेंगे। उस समय दीपंकर बुद्धके भविष्य-कथनके पूरा होनेके सूचक अनेक मंगल शकुन हुये, और लोगोंके हृदय आनन्द और शान्तिसे पूर्ण होगये।

---

१. तिलौराकोट, तौलिहवा (नैपालकी तराई) से दो मील उत्तर, स्टेशन शोहरतगंज, B. N. W. R.

तब महातापस सुमेधने सोचा—"बुद्ध झूठ नहीं बोल सकते। अवश्य मैं बुद्ध होऊँगा, अब मुझे बुद्धकारक धर्मोंका अन्वेषण करना चाहिये। तब उन्होंने निश्चय किया, कि मुझे दश पारमिताओं (=पूर्णताओं) का अभ्यास करना चाहिये। वह पारमितायें यह हैं—

१. दान—सर्वस्व दान, अपने जीवन तकको दूसरेके लिये अर्पण कर देना।

२. शील—काय, वचन, मनसे पूर्णतया परिशुद्ध रहना, सदाचारके मार्गसे जरा भी न हटना।

३. निष्कामता [नेक्खम्म]—सभी भोग-इच्छाओंका परित्याग, जन्म जन्मान्तर तक परोपकारके लिये आत्म-त्यागः जब तक कि उसमें पूर्णता न प्राप्त होजाये।

४. प्रज्ञा—नीचसे, ऊँचसे जहांसे भी मिल सके, वहांसे ज्ञानका संपादन करना।

५. वीर्य—वीरतापूर्ण पराक्रम, अविचल साहस, अन्त तक उद्योग करना। यहां तक कि उसमें पूर्णता प्राप्त होजाये।

६. क्षान्ति—सभी बातोंमें क्षमा सहन-शीलता, धैर्य्य रखना; कभी भी क्रोध या घृणाको मनमें न आने देना।

७. सत्य—पूरी सत्यवादिता, ज़रा भी सत्यके मार्गसे विचलित न होना।

८. अधिष्ठान—पर्वत-शिखरकी भांति अचल हो, सुमार्गसे ज़रा भी न हट, अपने मनोरथकी पूर्तिके लिये दृढ़मनस्कता।

९. मैत्री—माताके इकलौते पुत्रकी भांति एक समान सब प्राणियोंमें अनन्त प्रेम।

१०. उपेक्षा—समानता, शत्रु और मित्र सभीमें एक समान भाव दिखलाना, जैसे कि पृथिवी अच्छा बुरा जो भी फेंका जाता है, उसे एक भावसे स्वीकार करती है।

बोधिसत्व (=आगे बुद्ध बनने वाले) ने इन दश पारमिताओंको चार-असंख्येय-एक लाख कल्पों तक पूरा किया। इस पुण्य-संभारकी पूर्णतासे वह सिद्धार्थ कुमारके रूपमें उत्पन्न हुये, और बोध-गयामें बोधिवृक्षके नीचे २५१६ वर्ष पूर्व बुद्धत्वको प्राप्त हुये।

सिद्धार्थ कुमारकी दुष्कर-तपस्या।

राजकुमार अश्वारूढ़ हो [1]अनोमा नदीतक गये। नदी पार हो उन्होंने अपने रत्न आभूषण एवं कंथक घोड़ेको छन्नको देकर घरकी ओर बिदा किया। और स्वयं तलवारसे अपने लम्बे केशोंको काटकर यह कह आकाशमें फेंक दिया—'यदि मुझे बुद्ध होना है, तो यह केश आकाशमें ठहरे रहें, अन्यथा भूमिपर गिर जायें'। उन पवित्र केशोंको देवेन्द्र शक्र एक रत्न-मय करंडमें ग्रहण कर अपने लोकको ले गये। घटिकार ब्रह्मा शिकारीके रूपमें पीला कपड़ा पहिन कर आये। कुमार उन्हें देख अपने कपड़ोंसे शिकारीके कपड़ोंको बदल, और शिकारीके दिये भिक्षापात्रको ले, पैदल ही मगधमें राजा बिंबसारकी राजधानी [2]राजगृहमें पहुंचे। वहां उन्होंने घर घरसे भिक्षा मांगी। कुमारके सौंदर्यको देखकर लोग आश्चर्य करते थे, कि यह कौन पुरुष है? किसीने जाकर यह बात राजाको कही, कि एक महान् तापस नगरमें आया है। राजाने अपने आदमियोंको देखनेके लिये भेजा, उन्होंने कुमारका पांडव पर्वत तक अनुसरण किया। उस समय बोधिसत्त्वने प्राप्त भिक्षाकी ओर देखा, उसे देख उनकी आंतें मुँहको आने लगीं। क्योंकि जीवनमें उन्होंने कभी इस प्रकार का जुगुप्सित भोजन नहीं खाया था। उन्होंने अपनेको समझाना शुरू किया—जब मैंने जीवनकी सभी भोग-सामग्रियों को त्याग दिया, तो अब मुझे राजसी भोजनकी इच्छा भी

---

१. औमी नदी जिला गोरखपुर। २. राजगिरि (जि० पटना)

छोड़नी होगी। इस पर उनकी घृणा दूर हो गई। उन्होंने भिक्षान्न खाया। राजदूतोंने जो कुछ देखा था, उसे जाकर राजाको कहा। राजा बोधिसत्त्वके दर्शनार्थ पांडव पर्वतके किनारे आया, और उनके दिव्य शरीरको देखकर पूछा— "आप कौन हो?" बोधिसत्त्वने कहा—"मैं सूर्यवंशी क्षत्रिय-सन्तान हूँ, और हिमालयके पास शाक्य-देश मेरा देश है। इन्द्रिय-सुखोंमें तृप्ति और संतोष न पा, मैंने उन सभीको छोड़ दिया, और अब निर्वाणकी खोजमें हूँ।" राजाने आधा राज्य देकर रहनेके लिये प्रार्थना की, किन्तु बोधिसत्त्व अचल थे। तब राजाने प्रार्थना की कि बुद्ध होकर पहिले मेरे राज्यमें पधारें।

बोधिसत्त्व, पांडव पर्वतको छोड़ आलार-कालाम, और उद्दक-रामपुत्त दो परम सिद्धियोंको प्राप्त ऋषियोंके आश्रम की ओर चले। कुछ समय वह उनके साथ रहे, और वह जो कुछ सिखला सकते थे, उसे उन्होंने सीखा; अर्थात् अरूप ब्रह्मपदको, जहां संज्ञा (=होश) निद्रितप्राय रहती है, और ८४००० कल्पोंतक चेतनासुख भोगनेको मिलता है। फिर [1]नेरंजराके तटवर्ती, [2]उरुवेलामें एक रमणीय और शांत स्थान में प्रायः छः वर्ष दुष्कर तप किया। यहीं उन्हें पांच भिक्षु मिले, जो उनके शिष्य बन, निरन्तर उनकी तपस्याकी प्रतीक्षा करते रहे। बोधिसत्त्व सिर्फ एक तंडुल कणपर रहते थे; जिससे उनका दिव्य कांतिमय शरीर शुष्क और जर्जर हो एक कंकाल मात्र रह गया। उनकी तपस्या चरम सीमाको पहुँच गई, जब कि वह एक दिन बेहोश हो गिर पड़े, और देवताओं तकने समझ

---

१. वर्तमान नीलाजन नदी, जि० गया। २. बोधगयाके आस पास नदीके दोनों ओरका प्रदेश।

लिया, कि वे मर गये। उनकी दुष्कर तपस्याके जीवनका वर्णन मज्झिम-निकायके "भय भेरव," "सच्चक," "महा-सीहनाद," "बोधि राजकुमार" और "मागंदिय" सुत्तों में दिया हुआ है।

तब बोधिसत्त्वने अनुभव किया—तपस्या (=कायक्लेश) से निर्वाण नहीं प्राप्त हो सकता; क्योंकि मैं तपस्याकी परम-सीमाको पहुँच गया हूँ। इस पर उन्होंने शरीरमें बल लाने के लिये फिर भोजन ग्रहण करना शुरू किया; क्योंकि विना शरीरमें बलके मानसिक अभ्यास संभव नहीं। जब उन पांच ब्राह्मण भिक्षुओंने देखा, कि बोधिसत्त्वने स्थूल-आहार ग्रहण करना शुरू किया; तो उनकी श्रद्धा जाती रही, और वह बोधि-सत्त्वको छोड़ चल दिये। अब बोधिसत्त्व दिन प्रतिदिन ज्ञान और बल अर्जन करने लगे। यहां तक कि बोधि प्राप्त करने के पहिले दिन उन्होंने एक स्वप्न देखा, जिसका अर्थ उन्होंने समझा कि मैं बुद्धत्वको प्राप्त होऊंगा। वैशाखकी पूर्णिमाके दिन वह सवेरे ही जाकर अजपाल नामक बरगदके नीचे बैठे। जब वह वहां बैठे थे, उसी समय गांवके मुखिया सेनानीकी कन्या सुजाता, वृक्षके देवताको चढ़ानेके लिये सोनेकी थालीमें खीर ले आई। आकर उसने बोधिसत्त्वको वहां बैठे देखा, जिनके शरीरकी प्रभासे सारा वृक्ष प्रकाशित हो रहा था। सुजाताने समझा, वृक्षके देवता स्वयं शरीर धारण कर मेरी बलिको ग्रहण करने आये हैं। सुजाताने प्रसन्न हो खीर बोधिसत्त्वको प्रदान की। बोधिसत्त्वने उसे ले नदी तट जा, स्नान कर भोजन किया। दोपहरको नदी तटके एक शालकुंजमें बिता, सायंकालको वहां पहुँचे, जहां बोधि वृक्ष खड़ा था। पूर्व ओर मुंह करके वह इस दृढ़-निश्चय के

साथ वृक्षके नीचे बैठे—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डियांही क्यों न बाकी रह जायें; चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जायें; लेकिन तो भी बिना बुद्धत्वको प्राप्त हुये मैं इस आसन को न छोड़ूंगा।

बुद्धत्व-प्राप्ति ।

उसी स्मरणीय वैशाख-पूर्णिमाकी रातको शाक्यपुत्र सिद्धार्थने दश साहस्री लोकधातुको अपने दिव्य-आलोकसे आलोकित कर अनुपम सम्यक्-संबोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्त किया। सारे देवलोकमें आनन्दका स्रोत उमड़ आया। देव-गण बुद्धके आसनके पास आ बधाई देने लगे। उसी समय बुद्धने इस विजय-गाथाको कहा—

"अनेक जाति-संसारं संधाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसंतो दुक्खा जति पुनप्पुनं॥
गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं॥
विसंखार-गतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।"
(बहुजन्म जगमें दौड़ता फिरता बराबर मैं रहा।
नित ढूंढ़ता गृहकारको दुख जन्मके सहता रहा॥
गृहकार ! अब देखा गया, है फिर न घर करना तुझे।
कड़ियां सभी टूटीं तेरी गृह-कूटभी बिखरा पड़ा॥
संस्कार-विरहित चित्त अब, तृष्णा सभीके नाशसे।)

बुद्धत्वको प्राप्त कर निर्वाणके अनुपम सुखको अनुभव करते एक सप्ताह तक बुद्ध, [1]बोधिवृक्षके नीचे बैठे रहे। दूसरा सप्ताह बोधिवृक्षको अवलोकन करते—अपने अनुभूत परम सत्यके उस साकार चिन्हको पूजा अर्पण करतेसे—खड़े रह बिताया। तृतीय सप्ताहको टहलते हुये बिताया। चौथे

---

१. बोधगया (जि. गया) के बौद्ध-मंदिरके पीछे एक पीपलवृक्ष था, जिसकी संतान आजभी उसी स्थानपर है।

सप्ताह वह एक बर्गदके नीचे बैठे, जहाँ एक ब्राह्मणने आकर पूछा—'ब्राह्मण कैसे बनता है?' । पंचम सप्ताहको निर्वाणके परमानंदको अनुभव करते मुचलिंद वृक्षके नीचे बिताया, छठे सप्ताहको राजायतन-वृक्षके नीचे बिताया, जहाँ तपस्सु और भल्लुक दो वणिक् दर्शनके लिये आये । सातवें सप्ताहको अजपाल वृक्षके नीचे, जहाँपर ब्रह्माकी प्रार्थनाको स्वीकार कर उन्होंने धर्म-उपदेश करना स्वीकार किया ।

बुद्धने प्रथम सप्ताहमें प्रतीत्य-समुत्पाद (कारण-कार्य संबंधसे संसारकी उत्पत्ति) के महान् नियमका आविष्कार किया । इसीको बारह निदान भी कहते हैं । यही तीन प्रकार की अवस्थाओंमें अन्योन्य अवलम्बी हो, अपनेही कर्मोंके फलरूप पुद्गल या सत्त्वोंको उत्पन्न करते हैं । यह बारह निदान (=कारण) इस प्रकार हैं—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम-रूप, षड् (=छः)-आयतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरामरण ।

अविद्या—चार आर्य (=परम=उत्तम) सत्योंका न जानना ।

संस्कार—अच्छी, बुरी, न-अच्छीन-बुरी, कर्म-भूमियोंमें कियेका संस्कार, और काय, वचन, मनसे किये गये कामोंका प्रभाव ।

विज्ञान—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्, (=काय) और मनकी अपने अपने विषयोंमें लग्न चेतनाओंका समूह ।

नामरूप- पृथिवी, जल, तेज और वायुसे बना शरीर रूप है, और वेदना (अनुभव), संज्ञा (=जानना), और संस्कार नाम कहे जाते हैं ।

छ आयतन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन; जोकि विज्ञान के आश्रय हैं।

स्पर्श—चक्षु आदि इंद्रियोंका उनके विषयों—रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य एवं धर्म—से संपर्क (योग)।

वेदना—विज्ञानका छ आयतनोंसे संपर्क होनेसे जो तीन प्रकारका अनुभव—सुख, दुःख, न-सुख-न-दुख-होता है।

तृष्णा—वेदनाके बाद अनुकूल वेदनावाली वस्तुकी प्राप्ति के लिये इच्छा, या काम; भव, और विभवकी भूमियोंमें तीन प्रकारके इन्द्रिय-सुखोंके भोगनेकी इच्छा।

उपादान—कामभोगोंमें, शील-व्रत (तप जप यज्ञ आदि) में, दृष्टि (मिथ्यावाद) में, और आत्मवाद (आत्मा नित्य, ध्रुव, है) में दुराग्रह।

भव—काम, रूप, और अ-रूप लोक। जिन मानुष और देवलोकमें इन्द्रिय-सुख प्राप्य हैं, उन्हें कामभव, या कामधातु (लोक) कहते हैं। चार ध्यानोंके अभ्याससे मनुष्य ब्रह्माओंके लोकमें जाता है। ब्रह्मलोकही रूपभव, या रूप-धातु है। ब्रह्मलोकके ऊपर निराकार लोक अरूप-भव या आरूप्य धातु है, जहां सिर्फ संज्ञा (=चेतना) मात्र रहती है, विमोक्ष या दिव्य दृष्टिसे ज्ञान वहाँ साररूपमें प्राप्त होता है।

जाति—सात स्थितियों (=योनियों) में प्राणियोंका जन्म लेना।

जरा-मरण—वृद्धापन, मृत्यु; शोक, रोना-कांखना, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास (=हैरानी)।

यह संसार-सम्बन्धी प्रश्न है, जिसे मनोविज्ञानियों और अध्यात्म-चेताओंको हल करना है। इसीके हल होनेसे

मनुष्य सारेही संसारी दुःखोंसे मुक्त हो सकता है; और वह हल, पूर्ण-रूपेण बुद्ध और अर्हत् ही कर सकते हैं। भगवान् ने संसारके इस महान् प्रश्नको हल कर, मोक्ष-सुख अनुभव करते हुये यह गाथायें कहीं—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
तब शांत हों कांक्षा सभी, देखै सहेतू धर्मको॥...
तब शांत हो कांक्षा सभीही, जानकर क्षय कार्यको॥...
ठहरै कंपाता मार-सेना, रवि प्रकाशै गगन ज्यों॥"

चौथे सप्ताह जब कि भगवान् अजपाल-बर्गद्के नीचे बैठे थे, उस समय एक ब्राह्मणने आकर भगवान्को प्रश्न पूछा—"हे गौतम! ब्राह्मण कैसे होता है? ब्राह्मण बनानेवाले कौनसे धर्म हैं।" भगवान्ने उसका इस प्रकार उत्तर दिया—

"जो विप्र वाहित-पाप मल-अभिमान-विनु संयत रहे।
वेदांत-पारग ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्मसे।
सम नहिं कोई जिससा जगत्, सो होइ ब्राह्मण ब्राह्मणा।"

अजपाल बर्गद्से उठकर भगवान् मुचलिंद वृक्षके नीचे बैठे, और विमुक्ति-सुख अनुभव करते हुये निम्न गाथायें बोले—

"सन्तुष्ट देखन-हार श्रुतधर्मा, सुखी एकान्तमें।
निर्द्वन्द सुख है लोकमें, संयम जो प्राणी मात्रमें॥
सब कामनायें छोड़ना, वैराग्य है सुख लोकमें।
है परम-सुख निश्चय वही, जो साधना अभिमानका॥"

—:o:—

धर्मोपदेशके लिये ब्रह्माकी प्रार्थना।

सातवें सप्ताह जब भगवान् अजपाल बर्गद्के नीचे बैठे मोक्ष-सुखका आनन्द ले रहे थे, उसी समय उनको ख्याल आया—

"यह धर्म मिलता कष्टसे, इसका न युक्त प्रकाशना।
नहि राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना॥
गंभीर उलटी धार-युत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका।
तम-पुंज छादित रागरत-द्वारा न संभव देखना॥"

यह सोच भगवान्का चित्त धर्मोपदेशकी ओरसे उदासीन होगया। ब्रह्माने भगवान्के विचारको समझकर कहा—'लोक नष्ट होजायेगा, लोक विनष्ट होजायेगा, यदि भगवान् तथागत धर्मोपदेशसे उदासीन होगये।' तब ब्रह्माने भगवान्के सन्मुख उपस्थित हो प्रार्थना की—

"है धर्म जन्मा मलिन मगधहिं मन-मलिन जन कारणे।
अब धर्म अमृतद्वार-उद्घाटक विमल-चिंतित सुनें॥
जिमि गिरि-शिखर चढ़ि चार दिशहिं सुमेध! जनगण देखना।
तिमि धर्ममय-प्रासाद चढ़ि सर्वत्र-नेत्र! विलोकु ना॥
हे शोकसे-विरहित! जरा-जन्मादि-पीडित लोकको।
अवलोकु (करुणा हृदययुत) (नित) शोक (-पंक)-निमग्नको॥
उठ वीर! हे संग्राम-जित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋणा।
जग विचर धर्म-प्रचार कर, भगवान्! होगा जानना॥"

तब भगवान्ने ब्रह्माकी प्रार्थनाको जानकर, प्राणियोंपर दया करके लोगोंकी ओर देखा—उनमें कितने ही अल्पमल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर स्वभाव, समझानेमें सुगम प्राणियोंको भी

देखा। उनमें कितने ही परलोकसे भय खानेवाले थे। जैसे पानीमें घिरे कमलोंमें कोई कोई पानीके ऊपर न आ, भीतर ही डूबे पोषित होते हैं; कोई कोई पानीके बराबर रहते हैं, किन्तु कितने ही पानीसे बहुत ऊपर निकलकर, पानीसे अलिप्त हो खड़े रहते हैं। यह देख भगवान्ने ब्रह्माको गाथाओंमें कहा—

" श्रद्धा न रखते श्रोत्रयुतको मोक्ष-द्वार मिलै कहां।
गंभीर सुन्दर धर्म-अधिकारी नहीं गुनि चुप रहा॥"

ब्रह्मा यह समझ—कि भगवान्ने धर्मोपदेश करनेकी मेरी प्रार्थना स्वीकार करली—भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा-कर वहीं अन्तर्ध्यान होगया।

उस समय भगवान्के मनमें हुआ—" मैं पहिले किसे इस धर्मको उपदेश करूँ, जो इस धर्मको जल्दी समझ सकै।" तब भगवान्के मनमें हुआ—"पंचवर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे। उन्होंने साधकावस्थामें मेरी सेवा की थी। अच्छा हो, यदि मैं पंचवर्गीय भिक्षुओंको पहिले इस धर्मका उपदेश करूँ।" तब भगवान्ने अमानुष दिव्य विशुद्ध नेत्रोंसे पंचवर्गीय भिक्षुओंको बनारसके पास ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में रहते देखा।

तब भगवान्ने उरुबेलासे वाराणसीकी ओर प्रस्थान किया। और गया तथा बोधि (बोधगया) के बीच रास्तेमें, आजीवक संप्रदायका एक नग्न साधु उपक उन्हें मिला। उसने भगवान्को देखकर पूछा—" आयुष्मान्! तुम्हारा चेहरा समुज्वल है, तुम्हारी कान्ति परिशुद्ध है। किसको गुरु मानकर तुम संन्यासी हुये? कौन तुम्हारे गुरु हैं? किसके सिद्धान्तको तुम मानते हो?"

धर्मोपदेशके लिये ब्रह्माकी प्रार्थना।

तब भगवान्‌ने उपकको कहा—

"मैं सर्व-जेता सर्व-वेत्ता सर्व-पाप-अलिप्त हूँ।
तृष्णारहित सुविमुक्त हो उपदेश निज अनुभव करूँ॥
आचार्य है मेरा न मम सम और कोई दूसरा।
देवों सहित सब लोकमें नहिं पुरुष समसम है मेरा॥
संसार में अर्हत् विलक्षण धर्म-शिक्षक (दांत) हूँ।
अद्वितीय मैं संबुद्ध हूं, निर्वाण-प्राप्त प्रशांत हूं॥
हूं धर्मका चक्का घुमाने काशिपुरको जा रहा।
अन्धे जगत में अमृतका डंका बजाने जारहा॥"

उपकने कहा—"आयुष्मान् जैसा तुम दाव करते हो, उससे तो अनंत जिन (=विजेता) हो सकते हो।"

"मेरे ही ऐसे पुरुष जिन होते हैं, जिन वह है, जिसके राग, द्वेष आदि मल नष्ट हो गये हैं। मैंने पापोंको जीत लिया, इसलिये मैं जिन हूं।"

तब भगवान् क्रमशः यात्रा करते ऋषिपतन मृगदाव पहुँचे। पंचवर्गीय भिक्षुओंने दूरसे ही भगवान् को आते देखा। देखकर आपसमें पक्का किया—

"आयुष्मानों! यह साधन-भ्रष्ट, आराम-पसंद श्रमण गौतम आरहा है। इसको न हमें अभिवादन करना चाहिये, न प्रत्युत्थान करना चाहिये, न आगे बढ़कर इसका पात्र-चीवर लेना चाहिये। केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी, तो बैठेगा।"

लेकिन जब भगवान् उनके पास आये, तो वह अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके। अन्तमें भगवान्‌के पास
भगवान् का पात्र चीवर लिया, एकने आसन बिछाया, एक

ने पैर धोनेका जल और पीढ़ा ला रक्खा। भगवान् ने आसन पर बैठकर पैर धोया। उस समय वह भगवान्‌को आयुष्मान् कहकर पुकारते थे। इस पर भगवान्‌ने कहा—

"भिक्षुओ! तथागतको नाम लेकर या आयुष्मान् कहकर मत पुकारो। तथागत अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हैं; इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसे तुम्हें उपदेश करता हूं। उपदेशानुसार आचरण करने पर; जिसके प्राप्तिके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो सन्यासी होते हैं; उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें, जल्दी ही स्वयं जानकर साक्षात् कर, विचारोगे।"

ऐसा कहने पर पंचवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌को कहा—

"आयुष्मान् गौतम! उस साधनामें, उस धारणामें, उस दुष्कर तपस्यामें भी तुम इस पवित्र ज्ञानको न प्राप्त कर सके; तो फिर अब साधना-भ्रष्ट आराम-पसंद हो उसे क्या पाओगे?"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको कहा—

"भिक्षुओ! तथागत आराम-पसंद नहीं हैं, साधना-भ्रष्ट नहीं हैं, तथागत अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हैं। इधर कान दो०।"

दूसरी तीसरी वार भी पंचवर्गीय भिक्षुओंने नहीं माना। तब भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ! इससे पहिले भी क्या मैंने इस तरह तुमसे कहा था?"

"नहीं भगवान्!"

भगवान्‌ने कहा—भिक्षुओ! तथागत अर्हत सम्यक् संबुद्ध हैं, इधर कान दो०। भिक्षुओ! संन्यासियोंको इन दो अतियोंका सेवन न करना चाहिये। कौनसे दो? जो (१) यह

हीन, निकृष्ट, पामर मनुष्योंके योग्य, अनार्य-सेवित, अनर्थोंसे पूर्ण, काम-वासनाओंमें, काम-सुखोंमें लिप्त होना है; और जो (२) यह दुःखमय, अनार्य-सेवित, अनर्थ-पूर्ण काय-पीड़ामें लगना है। भिक्षुओ! इन दोनों अतियोंको छोड़ तथागतने मध्यका मार्ग निकाला है; जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला; शांति, अभिज्ञा, बोधि और निर्वाणको प्रदान करनेवाला है। कौनसा मध्यम-मार्ग ? यही उत्तम आठ-अंगोंवाला मार्ग (आर्य-अष्टांगिक-मार्ग); जैसेकि—

सम्यक्-दृष्टि—दुःख, दुःख-कारण, दुःखनाश, और दुःख-नाशकी ओर लेजानेवाला ज्ञान।

सम्यक्-संकल्प—कामना-रहित, द्रोह-रहित, हिंसा-रहित संकल्प।

सम्यक्-वचन—झूठ, चुगली, कटुवचन, और बकवादका छोड़ना।

सम्यक्-कर्मान्त—हिंसा, चोरी और दुराचारसे विरत होना।

सम्यक्-आजीव—अन्यायपूर्ण झूठे व्यवसायको छोड़, न्यायपूर्ण सच्चे व्यवसायसे जीवन-निर्वाह करना।

सम्यक्-व्यायाम—अनुत्पन्न बुराइयोंकी न उत्पत्तिके लिये, और उत्पन्नोंके विनाशके लिये; एवं अनुत्पन्न भलाइयोंकी उत्पत्तिके लिये, और उत्पन्न भलाइयोंकी वृद्धिके लिये दृढ़-निश्चय, परिश्रम और उद्योग करना।

सम्यक्-स्मृति—शरीरमें शरीरके धर्मों (अशुचि, जरा आदि) का अनुभव कर, उद्योगशील, अनुभव ज्ञान-युक्त हो लोभ और चित्त-संतापको छोड़ना। इसी प्रकार वेदनाओंमें, चित्तमें, धर्मोंमें उद्योगशील हो, लोभ और चित्त-संतापका छोड़ना।

सम्यक्-समाधि—कामुकताओं और बुराइयोंको छोड़, वितर्क विचार-सहित, विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरना। वितर्क विचारके शमित होजानेपर, भीतरी शांति, चित्तकी एकाग्रता एवं समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले, द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरना। प्रीति-विरक्त, उपेक्षक, स्मृति और संप्रजन्य (=अनुभव) से युक्त हो, कायासे सुखको अनुभव करते, जिसे कि आर्य जन उपेक्षक, स्मृतिमान् सुख-विहारवान् तृतीय ध्यान कहते हैं, उसे प्राप्त हो विहार करना। सुख और दुःखके परित्यागसे, खुशी और रंजके पहिलेही नष्ट होजानेसे, सुख-दुःख-रहित, स्मृतिकी परिशुद्धतावाले चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरना।

यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है, जिसको कि बुद्धने प्रतीत्य-समुत्पादके महान्-नियमको सर्वत्र काम करते अनुभव करने के समय प्राप्त किया। यही निर्वाणका रास्ता है। इस मार्गसे चलकर चार आर्य-सत्योंका साक्षात्कार होता है। आर्य-सत्य हैं—

दुःख—संसारमें जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है। व्याधि, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, दुःख, परेशानी सभी दुःख हैं। अप्रिय-संयोग, प्रिय-वियोग, इच्छा करके वस्तुका न पाना भी दुःख है। संक्षेपमें रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यह पांचों उपादान-स्कंध ही दुःख हैं।

दुःख-समुदय (दुःख-हेतु)—इन्द्रियसुख, दिव्यभोग आदि तृष्णा जो कि आवागमनका कारण होती है, वही दुःखका कारण है।

दुःखनिरोध—उसी तृष्णाके सर्वथा परित्यागसे दुःखोंका नाश होता है।

दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद्—(दुःख-नाशका मार्ग)—उपरोक्त आर्य-अष्टांगिक मार्गही, वह मार्ग है।

"भिक्षुओ! जब तक इन चार आर्य-सत्योंका विशुद्ध ज्ञान मुझे नहीं हुआ, तब तक मैंने यह दावा नहीं किया, कि मैंने अनुपम बोधिज्ञानको पा लिया। जब मैंने इन चार आर्य-सत्योंको जान लिया, तब मैंने समझा कि मैंने लोकमें परम-ज्ञानको पा लिया, मेरी मुक्ति अचल है, यह मेरा अंतिम जन्म है, अब फिर आवागमन नहीं है।"

भगवान्‌ने यह कहा, संतुष्ट हो पंच-वर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

आर्य अष्टांगिक मार्गही एकमात्र अनंत विकासका मार्ग है। इस मार्गके अनुगामीको संसारके तीन स्वभावोंका निरंतर ख्याल रखना होगा—कि (१) सभी वस्तुयें अनित्य हैं, क्षण क्षण परिवर्तित होरही हैं; (२) इसी क्षणिकता, अनित्यताके कारण संसारमें दुःख है; (३) और यहां कोई नित्य, ध्रुव, आत्मा नहीं है; जिसके लिये कि "मैं" और "मेरा" कहा जाये, तृष्णापरायण बना जाये।

वर्षाके तीन मास बिताकर भगवान्‌ने ऋषिपतनमें अपने साठ भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जितने भी दिव्य और मानुष बंधन हैं, मैं उनसे मुक्त हूँ; तुम भी दिव्य और मानुष पाशोंसे मुक्त होओ। भिक्षुओ! बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोक पर दया कर, देवताओं और मनुष्योंके हितके लिये विचरण करो; एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओ! जाओ, आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण इस धर्मका उपदेश करो। सार्थक

अत्यन्त परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करो। संसारमें अल्प दोषवाले प्राणी भी हैं; धर्मके न श्रवण करनेसे उनकी हानि होगी; सुननेसे वह धर्मके जाननेवाले होंगे।"

इस समयसे लेकर ४५ वर्ष तक, भगवान्‌ने गङ्गा, यमुनाके पुण्य जलसे प्रक्षालित बुद्धोंकी जन्मभूमि मध्यप्रदेशमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको विचरते हुये, लोगोंको धर्म-उपदेश किया। धनी गरीब राजा, और राजामात्य सभी भगवान्‌के समान रूपसे कृपापात्र थे। परित्यक्त अनाथ स्त्री, और कोढ़ी भगवान्‌की कोमल सहानुभूतिके विषय थे। सिर्फ प्रेम और करुणापूर्ण वचन भगवान्‌के मुखसे निकलते थे। हिमालयकी कुरविका पक्षीकी भांति उनके शब्द इतने मंजुल और मधुर थे, कि पशुभी बुद्धके शब्दोंपर मुग्ध रहते थे। जो कुछ भी उन ४५ वर्षों में उनके मुखारविन्दसे निकला, वह बहुजन-हितार्थ था। परम कारुणिक भगवान्‌के मुखसे कभी भी कटु-शब्द नहीं निकला। निकले भी कैसे जब कि वह संसार की सुख और शांतिके लिये उत्पन्न हुये थे। उषाकालमें प्रति दिन उठकर वह अपनी करुणामयी किरणोंको लोकमें फैला इस कल्याण-धर्मके पथिकको ढूंढते थे।

कोसी-कुरुक्षेत्र, विंध्य-हिमालयके बीचका देश, जिसे मध्य-देश कहते हैं, हमारे भगवान्‌की प्रिय लीलाभूमि थी। इसी पुण्यभूमिसे उनकी दिव्यवाणी दशो दिशाओंमें प्रसारित हुई। अपनी महती प्रज्ञा, पूर्ण प्रेम, और सर्व-वेत्तृतासे वह देव-मनुष्योंके माने हुये नेता थे। वह विशुद्धि देव थे, पवित्रताके अवतार थे। वह ऐसे समय संसारमें अवतीर्ण हुये, जब कि संसारको एक महान् प्रकाशकी अपेक्षा थी, और भारत अपने उत्कर्षके शिखरपर था, जब कि यूनानने भी

अभी अपने सुकातको पैदा न किया था। यद्यपि तारे संसारमें कितनेही पैदा हुये, किन्तु बुद्ध लोक-प्रकाशक महान् सूर्य थे। उनके सुवर्ण-वर्ण शरीरसे नील, पीत, रक्त, श्वेत किरणें अग्र-दूतकी भांति जाकर बुद्धके आगमनकी घोषणा करतीं थीं। लोग बड़ी उत्सुकताके साथ अपने घरोंमें भगवान्का स्वागत करनेके लिये तय्यार रहते थे। भगवान्के शील, स्वभाव और महत्ताके बारेमें कुछ जाननेके लिये भगवान्की पाली सूक्तियोंको पढ़ना चाहिये, जिन्हें त्रिपिटक—सुत्त-पिटक, विनय-पिटक, अभिधम्म-पिटक कहते हैं। सुत्त-पिटकमें निम्न ग्रन्थ हैं—

१. दीघ-निकाय। ३. संयुत्त-निकाय।
२. मज्झिम-निकाय। ४. अंगुत्तर-निकाय।

और ५. खुद्दक-निकाय, जिसमें कि निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

(१) खुद्दकपाठ। (९) थेरी गाथा।
(२) धम्मपद। (१०) जातक।
(३) उदान। (११) निद्देस।
(४) इतिवुत्तक। (१२) पटिसंभिदामग्ग।
(५) सुत्त-निपात। (१३) अपदान।
(६) विमान-वत्थु। (१४) बुद्धवंस।
(७) पेत-वत्थु। (१५) चरियापिटक।
(८) थेर गाथा।

विनय-पिटकमें यह पांच ग्रन्थ हैं—

(१) भिक्खु-विभंग। (३) महावग्ग।
(२) भिक्खुनी-विभंग। (४) चुल्लवग्ग।
(५) परिवार-पाठ।

अभिधम्म-पिटकमें निम्न सात पुस्तकें हैं—

(१) धम्म-संगणी। (४) पुग्गल-पञ्ञत्ति।
(२) विभंग। (५) धातु-कथा।
(३) कथावत्थु। (६) यमक।
(७) पट्ठान।

यह ग्रन्थ अपने भाष्य (अट्ठकथा), और टीकाओंके साथ पाली भाषामें सीलोन, वर्मा और श्यामके मठोंके पुस्तकालयोंमें वहांके अक्षरोंमें बहुतसे मुद्रित भी मिलते हैं। संस्कृतका साधारण ज्ञान रखनेवालोंके लिये पाली छ महीनेकी भाषा है। देवनागरी अक्षर जानने वालोंको भी सुविधा हो, इसलिये काशीवासी बाबू शिवप्रसादगुप्तके अर्थ-साहाय्यसे त्रिपिटक, अट्ठकथा और टीकाके साथ नागरी अक्षरोंमें त्रिपिटकाचार्य श्रीराहुल सांकृत्यायन, और आचार्य श्रीनरेन्द्रदेवके संपादकत्वमें मुद्रित हो रहा है। कुछही वर्षोंमें आशा है, भारतीय जनताको अपने अक्षरोंमें यह अमूल्य-राशि उपलब्ध होने लगेगी।

भगवान्के इस त्रिपिटकका सार एक गाथामें इस प्रकार दिया गया है—

"सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
स-चित्त-परियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं।"
(सबै बुराई छाड़िबो, करिबो पुण्य-असेस।
निज मानसको साधिबो, यहै बुद्ध-उपदेस॥)

निर्वाणके साधन ३७ भागोंमें विभक्त किये गये हैं, जिन्हें बोधिपाक्षिक-धर्म कहते हैं, वह यह हैं—

१. चार स्मृतिप्रस्थान, जो आर्य अष्टांगिक मार्गके सातवें पदार्थमें सम्मिलित हैं।

२. चार ऋद्धिपाद (उच्च आध्यात्मिक और योगिक सिद्धियोंकी प्राप्ति के लिये अपेक्षित बातें)–छन्द-समाधि (आत्म-विकासकी इच्छा), चित्त-समाधि (चित्त-शुद्धि), वीर्य-समाधि (दृढ़ अभ्यास), विमर्श-समाधि आत्म-परीक्षण) ।

३. चार सम्यक्-प्रधान–(दृढ़-उद्योग) जो आर्य-अष्टांगिक-मार्गके छठे पदार्थमें सम्मिलित हैं ।

४. पांच इन्द्रियां–(अध्यात्म-सिद्धिमें विशेष कारण)—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा ।

५. पांच बल–उपरोक्त समाधि आदि, मुक्ति-साधनमें परम सहायक होनेसे बल भी कहे जाते हैं ।

६. सात बोध्यङ्ग-स्मृति (सतत सावधानता), धर्म-विचय (धर्मका गम्भीर अध्ययन), वीर्य (दृढ़ अभ्यास), प्रीति (चित्त की प्रसन्नता), प्रश्रब्धि (चित्तकी समता), समाधि, उपेक्षा (अपने प्रति किये गये दुर्भावों और अत्याचारोंकी उपेक्षा) ।

७. आर्य-अष्टांगिक-मार्ग–ऊपर आचुका है ।[1]

---

१. इनके विस्तृत विवेचनके लिये श्रीराहुल सांकृत्यायनका हिंदी ग्रन्थ "बुद्धचर्या", तथा संस्कृत ग्रन्थ "अभिधर्मकोश" देखिये ।

भगवान् बुद्ध और जातिभेद ।

भगवान्‌ने ऊँच-नीच जातिभेदके खिलाफ अपनी आवाज उठाई। सुत्तपिटकके कई स्थानोंपर इस ऊँच-नीच भावका खंडन है। दीघ-निकायके अम्बट्ठ, अग्गञ्ञ, और सोणदंड; मज्झिम निकायके अस्सलायण, और मधुर; तथा खुद्दक-निकाय (सुत्त निपात) के वासेट्ठ सूत्रोंमें इसपर बहुत कहा है। भारतकी राष्ट्रीय-शक्तिको निर्बल कर समय समय पर उसे परतंत्र करनेमें यह ऊंचनीच भावपूर्ण जातिभेद एक प्रधान कारण रहा है। बुद्धने इसके विरुद्ध उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि चांडाल-तकके लिये उन्होंने भिक्षु बननेका अधिकार देदिया। इसके कारण यह भेदभाव कम होने लगा। जिसके फल स्वरूप मौर्य भारतव्यापी साम्राज्य स्थापित करनेमें समर्थ हुये। मौर्य-वंशके बाद शुंगोंके हाथमें राज्य-शासन आया। उन्होंने ब्राह्मणोंकी सलाहसे उत्साहित हो फिर जातिभेद को बढ़ाना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि भारत न फिर सागर, हिमालय और हिंदूकुशतककी अपनी सीमाको अक्षुण्ण रख सका; और न विदेशी शत्रुओं शक, हूण, तुर्क, आदिकी अधीनता और अत्याचारोंसे अपनेको बचा सका। यह रोग ढाई हजार बरस पहिले जितना था, उससे अब कई गुना अधिक बढ़ गया है। इसके हटाये बिना भारतका भविष्य उज्वल नहीं है। नीचे अस्सलायण-सुत में आया भगवान् बुद्धका उपदेश संक्षेपमें दिया जाता है।

एक समय भगवान् श्रावस्ती नगरके जेतवनमें विराजते थे। उस समय नानादेशोंसे आये पांचसौ ब्राह्मणोंने विचार किया—यह श्रमण गौतम चातुर्वर्णी-शुद्धि (चारों वर्णों की

शुद्धता) का उपदेश करता है, कौन है, जो इसके साथ शास्त्रार्थ कर सकता है। उस समय श्रावस्तीमें काव्य, व्याकरण आदि सहित तीनों वेदोंमें पारंगत आश्वलायन नामक ब्राह्मण-तरुण वास करता था। इच्छा न रहते हुये भी उन्होंने उसे आग्रह कर बुद्धके पास शास्त्रार्थके लिये भेजा। आश्वलायनने भगवान्‌के पास जाकर कहा—

"हे गौतम! ब्राह्मण कहते हैं कि—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे छोटे हैं। ब्राह्मणही शुद्ध हैं, दूसरे नहीं। ब्राह्मणही ब्रह्माके औरस पुत्र, ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न, ब्रह्माके दायाद हैं। इसमें आपकी क्या राय है?"

भगवान्‌ने कहा—"लेकिन आश्वलायन! ब्राह्मणोंकी (जननी) ब्राह्मणियां ऋतुमती गर्भिणी, प्रसूता, स्तन-पान कराती देखी जाती हैं। इस प्रकार योनिसे उत्पन्न होनेपर भी ब्राह्मण कहते हैं—ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न ब्रह्माके दायाद हैं। क्या तुमने सुना है, कि यवन और कम्बोज तथा दूसरे भी सीमान्त-देशोंमें आर्य (=स्वतंत्र) और दास (=गुलाम) दो ही वर्ण हैं। उसमें भी आर्यसे दास हो सकता है, दाससे आर्य हो सकता है।"

आश्वलायन—"हां, सुना है।"

बुद्ध—"तो ब्राह्मणोंको यह कहनेका क्या अधिकार है, कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है०। आश्वलायन! यदि कोई क्षत्रिय०। ०ब्राह्मण, हिंसक, दुराचारी, झूठा, चुगुलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, झूठी धारणावाला हो; तो क्या मरनेके बाद वह दुर्गति, नर्कमें उत्पन्न न होगा? (इसी प्रकार) यदि कोई वैश्य०, शूद्र०?"

आश्वलायन—" हे गौतम ! सभी चारों वर्ण हिंसक० हो नर्कमें उत्पन्न होंगे ।"

बुद्ध—" क्या ब्राह्मणही अहिंसक, सदाचारी० अलाभी, अद्वेषी हो, मरनेके बाद स्वर्ग और सुगतिको प्राप्त होगा, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं ? "

आश्वलायन—"नहीं हे गौतम ! क्षत्रिय भी, ब्राह्मण भी, वैश्य भी, शूद्र भी, अहिंसक, सदाचारी० हो स्वर्ग और सुगतिको प्राप्त कर सकता है ।"

बुद्ध—"आश्वलायन ! यदि कोई राजा नाना जातिके १०० पुरुषोंको इकट्ठा करके कहे—आओ, तुममेंसे जो क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र हैं, वह शाल, सरल, चंदन या पद्मकी लकड़ीकी अरणी लेकर आग तय्यार करे, और जो चंडाल, निषाद, रथकार आदिकुलके हैं, वह कुत्ते सूअरके पीनेकी कठरीकी लकड़ी धोबीके काठकी लकड़ी या रेंडकी लकड़ीकी अरणी बना आग तय्यार करें । तो आश्वलायन ! क्या क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रकी शाल, सरल, चंदन, पद्मकी अरणी द्वारा बनाई आगही अर्चिमान्, वर्णवान्, तेजस्वी होगी, उसीसे आगका काम लिया जा सकता है; चंडाल, निषाद आदिकी कुत्ते-सूअरके पीनेकी कठरी आदिकी अरणीद्वारा उत्पन्न आग नहीं ? उससे आगका काम नहीं लिया जा सकता ? "

आश्वलायन—" नहीं, हे गौतम ! सभी आग० तेजस्वी होगी, सभी आगोंसे आगका काम लिया जा सकता है । "

बुद्ध—"यदि क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ सहवास कर, पुत्र उत्पन्न करै, तो वह पिताके समान क्षत्रिय और माताके समान ब्राह्मण होगा ? यदि ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ० ?"

आश्वलायन–"हां, होगा।"

बुद्ध–"यदि घोड़ी गदहेके जोड़से बछड़ा उत्पन्न हो, तो क्या वह माताके समान घोड़ा और पिताके समान बछड़ा होगा?"

आश्वलायन–"नहीं हे गौतम! वह खच्चर होगा, यहां भेद देखता हूं, किंतु उन दूसरोंमें कुछ भेद नहीं देखता।"

बुद्ध–"दो जमुवे ब्राह्मण-कुमार हों, उनमें एक उपनयन-युक्त वेदाध्ययन करता हो, दूसरा उपनयन-रहित वेदाध्ययन न करता हो; तो उन दोनोंमें किसे ब्राह्मण श्राद्ध, यज्ञ आदिमें प्रथम भोजन करायेंगे?"

आश्व०–"जो उपनीत अध्यायक है; अनुपनीत, अन्-अध्यायकको भोजनदानसे कौन महाफल होगा?"

बुद्ध–"आश्वलायन! दो जमुवे ब्राह्मण-कुमारोंमें एक उपनीत अध्यायक (वेद-पाठी) किंतु पापी दुराचारी हो; दूसरा अनुपनीत, अन्-अध्यायक, किंतु सदाचारी और निष्पाप हो। ब्राह्मण उनमें किसे प्रथम भोजन करायेंगे?"

आश्व०–"जो अनुपनीत० किंतु सदाचारी० है। पापी दुराचारीको देनेसे क्या फल होगा?"

बुद्ध–"आश्वलायन! तू पहिले जन्मको मानता था, फिर तूने उपनयन-वेदाध्ययनको मुख्य माना, और अब चातुर्वर्णी शुद्धिपर आगया, जिसका मैं उपदेश करता हूं।"

बौद्ध-धर्मका प्रसार।

भगवान्, बुद्ध होनेके बाद ४५ वर्षोंतक इसी गंगा-यमुना-की धाराओंसे परिपूत देशमें विचरते रहे। वर्षाके तीन मास श्रावण, भादों, आश्विनमें वह नियमसे किसी एक जगह वास करते थे। बाकी नौ-मास प्रायः ग्राम, नगर, राजधानीमें लोगों को धर्म-उपदेश करते हुये बिचरते थे। भगवानके शिष्योंमें गंधार, गुजरात तकके लोग थे। उनके द्वारा उसी समय बुद्ध-धर्म उन देशोंतक पहुँच चुका था। धीरे धीरे यह धर्म बढ़ताही जा रहा था, कि भगवान्के निर्वाणके प्रायः सवा दो सौ वर्ष बाद सम्राट् अशोक हिंदूकुश-हिमालय-समुद्रसे घिरी भारत-मही-के स्वामी हुये। उन्होंने विदेशमें धर्म-प्रचारार्थ प्रचारक भेजने में अपने गुरु स्थविर मौद्गलिपुत्र-तिष्यकी बड़ी सहायता की। संघस्थविर मौद्गलिपुत्र-तिष्यकी अध्यक्षतामें जहाँ संघने बुद्ध-भाषित पिटकोंका संशोधन किया, वहाँ उसने दक्षिणी भारत, हिमालय आदि भारतहीके देशोंमें नहीं, बल्कि बर्मा, लंकासे लेकर सुदूर पश्चिम मिश्र, सिरिया, फिलस्तीन, मकदुनिया तक धर्म-प्रचारक भेजे।

लङ्का। सम्राट् अशोकके पुत्र और स्थविर मौद्गलिपुत्रके शिष्य, स्थविर महेन्द्र लंकामें धर्म-प्रचारार्थ भेजे गये। उस समय लंकामें देवानां प्रिय तिष्य राज्य करते थे। सम्राट्-अशोकका प्रभाव वहाँ पहिलेही से पहुंच गया था। स्थविर महेन्द्रके उपदेशोंसे कुछही समयमें राजासे रंक तक प्रायः सभी लंका-वासी बौद्ध धर्ममें दीक्षित होगये; और तबसे आजतक हैं।

---

१. "बुद्धचर्य्या" से।

बर्मा। बर्माके पेगू जिलेके आसपासके प्रदेशको सुवर्ण-भूमि कहते थे। सम्राट् अशोकके समय ईसा पूर्व तृतीय शताब्दीमें यहां भी धर्म-प्रचारक भेजे गये। तबसे बर्मा बौद्ध-धर्मावलंबी रहा। ग्यारहवीं शताब्दीमें वहांका बौद्ध-धर्म भी भारतकी भांति तांत्रिकसा हो गया था। महाराज अनवरतकी सहायतासे उसमें सुधार हुआ। लंकाने भी इसमें समय समय पर सहायता की।

स्याम। कंबोज (कंबोडिया)। इन दोनोंही देशोंमें बौद्ध-धर्म प्रधान धर्म है। स्यामके महाराज तो सदासे बौद्ध-धर्मके भक्त रहते आये हैं। पहिलेका बौद्धधर्म धीरे धीरे कलुषित हो गया था। महाराज कोमृहेङ्ने १३ वीं शताब्दीमें सुधार करने में बड़ी तत्परता दिखलाई। लंकासे एक बड़े संघनायक इस कामके लिये बुलाये गये थे। स्यामसे ही सुधार कम्बोजमें भी पहुँचा।

खोतन, मध्य—एसिया। परंपरासे मालूम होता है, कि सम्राट् अशोकके समयही भारतीय प्रवासी खोतनमें जा बसे थे; किंतु निश्चयसे नहीं कहा जा सकता, कि कब बौद्ध-धर्म तरिम् नदी की उपत्यकामें प्रविष्ट हुआ। इसमें तो शक नहीं कि ईसाकी प्रथम शताब्दीमें वहां बौद्ध धर्म था। चीनमें बौद्धधर्म-का प्रचार करनेमें इस देशका वैसाही भाग था, जैसा कि पीछे जापान और कोरियामें बौद्धधर्म फैलानेमें चीनका। फाहियान और ह्वान-चाङ्के समय बदख्शाँ, काशगर, कूचा आदिमें बौद्धधर्म का एकछत्र राज्य था। यहांसे बौद्धधर्म मंगोलियामें भी पहुँचा था, किंतु पीछे वह लुप्त या शिथिल होगया था, फिर सम्राट् कुबिले खांके समयमें फिर मंगोलियामें प्रचार हुआ; और अबतक है।

चीन। खोतनसेही स्थलमार्ग द्वारा बौद्धधर्म चीन पहुँचा। सन् ६२ ईसवीमें बौद्ध-धर्मका चीनमें प्रवेश कहा जाता है, लेकिन उसका इससे पूर्व होनाभी संभव है। चीन उस समय भी बहुत सभ्य देश था। जैसे जैसे बौद्धधर्म बढ़ता गया, वैसेही वैसे लोगोंकी भारतमें आकर धर्म-अध्ययनकी इच्छा बढ़ती गई। और अंतमें चौथी शताब्दीमें फाहियान्, सातवीं शताब्दीमें ह्वान-चङ् एवं उसके बाद इ-चिङ्ने भारतकी यात्रा की। आज भी उनके यात्राग्रंथ तत्कालीन भारतके इतिहासके लिये बड़े उपयोगी सामग्री हैं। तेरहवीं शताब्दीमें जबकी सम्राट् कुब्लिले खां चीनके शासक थे, उस समय तिब्बतका तांत्रिक-बौद्ध-धर्म वहां प्रविष्ट हुआ। तबसे तिब्बत एक तरह चीनका गुरु-देश समझा जाने लगा।

कोरिया, जापान, अनाम का बौद्धधर्म चीनके बौद्ध-धर्मसे निकला है, और वहींसे प्रचारित भी हुआ है। चौथी शताब्दीमें बौद्ध धर्मने कोरियामें प्रवेश किया; और वहांसे छठवीं शताब्दीमें जापान पहुँचा। अभी भी इन देशोंका प्रधानधर्म बौद्ध-धर्म है।

तिब्बत—सातवीं शताब्दीमें सम्राट् स्रोङ्-चन्-गेम्बोके समयमें बौद्धधर्म नैपाल और चीनसे तिब्बत पहुंचा। आठवीं शताब्दीमें नालंदाके आचार्य शांत-रक्षित वृद्धावस्थामें धर्म प्रचारार्थ तिब्बत गये। उन्होंने ही तिब्बतमें बुद्ध-धर्मकी गहरी नींव रक्खी। उनके बाद बहुतसे ग्रंथोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद हुआ। ग्यारहवीं शताब्दीमें विक्रम शिलाके आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान राजा ल्हा-लामाके निमंत्रणपर तिब्बत गये। जिस समय भारतके नालंदा, विक्रमशिला आदि महाविहार तुर्कोंद्वारा नष्ट कर दिये गये, उस समय कई भारतीय विद्वान् तिब्बत गये। तिब्बतमें बौद्धधर्मके प्रचारके साथ सहस्रों

ग्रंथोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद हुआ। आज भी ऐसे ग्रंथोंकी संख्या हजारसे ऊपर है, जिनके कि संस्कृत या प्राकृत मूल नष्ट होगये; किंतु अनुवाद सुरक्षित हैं।

इस प्रकार एसियाके पूर्वीय भागमें अबभी बौद्धधर्मकी प्रधानता है। सम्राट् अशोकके समय भेजे गये धर्म प्रचारकोंने ग्रीस, मिश्र, फिलस्तीन, मेसोपोटामिया, ईरान आदिमें भी बौद्ध-धर्म फैलाया था। विद्वानोंका कहना है, कि महात्मा ईसा के समय फिलस्तीनमें एसिनी नामक जो एक भिक्षुओंका संप्रदाय था, वह बौद्धही था। ईसाके गुरु योहन उसी संप्रदायके थे। बाल्यसे ही १४, १५ वर्ष जो महात्मा ईसा लुप्त थे, वह किसी एसिनी-विहारमें ही रहे होंगे। यही तो कारण है, जो ईसाकी शिक्षामें एक दो नहीं सैकड़ों बुद्धके उपदेशसे समानतायें मिलती हैं। *

---

* इस छोटी पुस्तिकामें हम विस्तारसे नहीं लिख सके। हिन्दी पाठकोंमें जिनको बुद्ध, बुद्ध-उपदेश और बुद्ध-कालीन भारतका त्रिपिटकके शब्दोंहीमें विशेष अध्ययनकी इच्छा हो, वह हालहीमें छपे त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायनके विशाल-ग्रंथ "बुद्धचर्या" को पढ़ें; जो हमारे यहांसे मिल सकता है।

परिशिष्ट।

सारनाथ (ऋषिपतन), जि. बनारस।

यह वही पुण्य-स्थान है, जहाँ बोधगयामें बुद्धत्त्व प्राप्त करनेपर भी भगवान् अपना प्रथम उपदेश करनेके लिये आये। दुनियाके बौद्धोंके चार परम-पुनीत-स्थानों [बोध-गया, जि० गया। कसया, जि० गोरखपुर (निर्वाण-स्थान)। रुम्मिनदेई, (नैपालकी तराई), स्टेशन-नौतनवा, B. N. W. Ry., और यह] में है। बारहवीं शताब्दीके अन्तमें यहाँके विहार तुर्कों-द्वारा नष्ट कर दिये गये। तबसे यह स्थान सुनसान, सु-विध्वस्त पड़ा था। छः शताब्दियों तक छोटी पहाड़ीकी तरह तीन बड़े बड़े स्तूप यहां खड़े थे, लेकिन लोग परंपरा तक भूल गये थे, और इन्हें वह लोरिक-कुदान—लोरिक नामक अहीरके दूधके मटके लेकर कूदनेका स्थान—और सीता-रसोंई कहा करते थे। सन् १७९४ में बनारसके महाराजके दीवान, जगत-सिहने बनारसमें जगतगंज मुहल्लेके बनवानेके लिये, सम्राट् अशोकके बनवाये धमराजिका-स्तूप को (जो फिर फिर मरम्मत होता, उस समय धमेख स्तूपहीकी भांति विशाल और प्रस्तरमय था) पत्थर लेजानेके लिये ध्वस्त किया। उन्हींके लिये नहीं बल्कि पीछे बरनाके पुलके बनानेके लिये भी सारनाथ, पत्थरकी खदान (खान) थी। बनारसके गवर्नमेंट संस्कृत-कालेजके बनानेमें भी यहांसे खोद खोदकर पत्थर गया था।

सन् १८३४ में भारतीय पुरातत्त्व-अनुसंधानके जन्मदाता जेनरल कनिंघम्ने पहिले पहिल यहाँ खुदाई शुरू की।

उन्होंनेही उसका सब खर्च अपने पाससे दिया। १८५१ में मेजर किट्टोने भी कुछ खुदाई करवाई। इसके बाद १८५६ में सर्कारने इस स्थानको मिष्टर फर्गुसन एक निलहे-गोरेसे खरीद लिया, जो कि उस समय इसके मालिक थे। यद्यपि खुदाईका काम १८९४ ई० से शुरू हुआ; तो भी वह बाकायदा १९०४ ई० से ही होने लगा। खुदाईमें बहुतसी मूर्तियाँ, अलंकृत पत्थर, धातु और मिट्टीके वर्तन आदि मिलते गये, जिनके रखनेके लिये १९१० ई० में सारनाथ-संग्रहालय बनाया गया। १९ वीं शताब्दीके अंतमें प्रख्यात बौद्ध-धर्म-प्रचारक श्री अनागारिक धर्मपाल यहां आये। उस समय यह स्थान सूअरों की चरागाह थी। १९०४ ई० में उन्होंने धमेख-स्तूपके पास थोड़ीसी जमीन ले वहां एक धर्मशाला और एक निःशुल्क हिंदी-स्कूल बनवाया। महाबोधि-सभा, जिसके कि श्री देवमित्र धर्मपाल (भू. पू. अनागारिक धर्मपाल) संस्थापक हैं, बहुत दिनोंसे चाहती थी, कि यहां पर स्थानके अनुरूपही कोई महान् संस्था बनाई जाये। इतने दिनोंके बाद महाबोधि-सभाने एक लाखसे ऊपर रुपया लगाकर एक विशाल मंदिर बनवानेमें सफल हुई, जिसका कि नाम भगवान्के मूल-निवासगृहके नाम पर मूलगंधकुटी विहार रक्खा गया है। इसके अलावा यहां निम्नलिखित संस्थायें हैं—

२. महाबोधि निःशुल्क स्कूल (स्थापित १९०४)।

३. मूलगंध कुटीविहार-पुस्तकालय (बन रहा है)।

४. महाबोधि धर्मार्थ औषधालय (जल्दही काम शुरू होगा)।

५. अन्तर्-राष्ट्रीय बौद्ध शिक्षालय (बौद्ध धर्म, दर्शन और इतिहासके अध्ययन, एवं बौद्ध प्रचारक तय्यार करनेके लिये), जिसका काम शुरू होगया है ।

---

१. भारत या भारतीय संस्कृतिके लिये इस कामका कितना महत्त्व है, यह आप स्वयं जान सकते हैं । आप धन, पुस्तकालयके लिये पुस्तक, औषधालयके लिये औषध आदि द्वारा सहायता कर सकते हैं ।

सभी सहायता इस पतेपर भेजनी चाहिये ।

श्री देवप्रिय वलीसिंह,
मंत्री, महाबोधि सभा;
4 A, कालेज स्कायर कलकत्ता ।
अथवा
सारनाथ, बनारस.

BOOKS ON BUDDHISM

	Rs.	A.	P.
Dharmapala, Anagarika—			
What did Lord Buddha Teach ...	0	4	0
Psychology of Progress	0	4	0
Repenting God of Horeb ...	0	4	0
Relation between Hinduism and Buddhism	0	4	0
Life and teachings of Buddha ...	0	12	0
Budhadever Upadesh (Bengali) ...	0	4	0
Bhagwan Buddha ke Upadesh ...	0	3	0
Bhikkhu Silacara—			
Buddhism for Beginners ...	0	6	0
Kamma—A Scientific Exposition of ...	0	6	0
The Dhammapada or Way of Truth ...	0	6	0
Majjhima Nikaya	7	0	0
The Four Noble Truths	0	10	0
The Noble Eightfold Path	1	4	0
Bhikkhu Ananda Metteyya—Wisdom of the Aryas	2	1	0
A. D. Jayasundare—Numerical Sayings (Anguttara Nikāya). Board ...	6	0	0
Narasu, Lakshmi—			
Essence of Buddhism	2	0	0
H. C. Warren—Buddhism in Translation	10	0	0
Paul Dahlke—Buddhism and Science ...	8	2	0
C. T. Strauss—Buddha and His Doctrine	2	8	0
Lord Chalmers—Further Diafogues of Buddha—Part I and II each ...	8	10	0
Dr. B. Law, M. A., Ph. D.—			
Some Kshatriya tribes of Ancient India ...	10	0	0
Dr. Paul Carus—			
Gospel of Buddha, (Paper) ...	2	4	0